IJAER/January-Feburary 2015 /Volume-4/Issue-1 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Researc

प्रभाकर माचवे के काव्य में आधुनिक भावबोध

दामोदर लाल मीना

व्याख्याता हिन्दी राजकीय महाविद्यालय

करौली राजस्थान

सार

कवि प्रभाकर माचवे का जन्म 26 दिसंबर 1917 को एक मराठी परिवार में ग्वालियर में हुआ था। दर्शनशास्त्र में स्नातकोत्तर के बाद उन्होंने 'हिंदी–मराठी निर्गुण संत काव्य' विषय पर आगरा विश्वविद्यालय से शोध पूरा किया। देश–विदेश में प्राध्यापन के साथ ही वह संघ लोक सेवा आयोग में विशेष भाषाधिकारी और साहित्य अकादेमी के सचिव के रूप में कार्यरत रहे। भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला में मानद फेलो और भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता में निदेशक के रूप में भी उनकी संबद्धता रही। बाद में 'चौथा संसार' (इंदौर) के संस्थापक संपादक बने।

वह विद्यार्थी जीवन से ही कविताएँ लिखने लगे थे। उनकी पहली कविता 1934 में माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित 'कर्मवीर' में छपी। 1935 में प्रेमचंद ने 'हंस' में उनकी पहली कहानी प्रकाशित की। इसी तरह निराला द्वारा 1936 में 'सुधा' में उनका पहला लेख छापा। 1937 में उन्होंने जैनेंद्र के दार्शनिक विचारोंवाले निबंधों का संपादन किया जो 'जैनेंद्र के विचार' नाम से प्रकाशित हुआ। 1938 में अज्ञेय ने 'विशाल भारत' में उनकी दो इंप्रेशनिस्ट कविताएँ छापीं।

प्रभाकर माचवे द्वारा लिखित, अनूदित, संपादित पुस्तकों की संख्या सवा सौ से अधिक है। 'स्वप्न भंग', 'अनुक्षण' और 'विश्वकर्मा' उनके प्रमुख काव्य–संग्रह हैं। उन्होंने हिंदी, मराठी और अंग्रेजी में समान अधिकार से लिखा है। वह बहुभाषाविद् थे। भारत की बहुत सी भाषाएँ समझ और बोल लेते थे। अपने इस भाषाज्ञान का उपयोग उन्होंने हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए किया। चित्रकला में भी उनकी रुचि थी और उन्होंने इसकी शिक्षा ली थी। उन्हें सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार और उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 2

भूमिका

परंपरागत कविता से आगे नये विषय, नई भाषा, नये भावबोध और अभिव्यक्तियों के साथ ही प्रयोगवाद के बाद हिंदी कविता में श्नयी कविताश की शुरुआत हुई। इसमें नये मूल्यों और नये शिल्प–विधान का अन्वेषण किया गया। प्रभाकर माचवे भी श्नयी कविताश की धारा के ही कवि रहे। 1917 में ग्वालियर में जन्मे डॉ. प्रभाकर माचवे की शिक्षा इंदौर में हुई। श्स्वप्न भंग, श्अनुक्षण, श्तेल की पकौड़ियां तथा श्विश्वकर्मश इनके कविता संग्रहों के नाम हैं। इन्होंने उपन्यास, निबंध, समालोचना, अनुवाद आदि मराठी, हिन्दी, अंग्रेजी में 100 से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। डॉ प्रभाकर माचवे श्सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कारश तथा उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के सम्मान सम्मानित भी हुए। 17 जून 1991 को हिंदी के इस लब्धप्रतिष्ठ लेखक ने अंतिम सांस ली। प्रस्तुत है उनकी चुनिंदा रचनाएं–

निर्जन की जिज्ञासा है निर्झर की तुतली बोली में

विटपों के हैं प्रश्नचिन्ह विहगों की वन्य ठिठोली में

इंगित हैं श्कुछ और पूछ लूँश इन्द्रचाप की रोली में

संशय के दो कण लाया हूँ आज ज्ञान की झोली में ।

यहाँ मुक्ति की प्रबल चाह है उसी एक दुर्दान्त शक्ति की–

हमें न कोई पनाह अथवा शरण चाहिए, अन्ध–भक्ति की !

यहाँ सरल अन्तर दो परस्परातुर और चाहिए भी क्या ?

हमें न किंचितमात्र जरूरत किसी तर्क की, किसी युक्ति की !

श्री माचवे को पहले सहायक सचिव के रूप में और फिर साहित्य अकादमी के सचिव के रूप में सेवा करने और अपने दैनिक कार्य के दौरान भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी में समकालीन लेखन को संभालने में सक्षम होने के कारण काफी फायदे हुए हैं। हालांकि यह संभावना या वास्तव में पूर्वाग्रह या पूर्वाग्रह के तथ्य से इंकार नहीं करता है, यह लेखक को उस व्यापक और परिप्रेक्ष्य के साथ प्रदान करता है जिसने आधुनिक लेखन के संपर्क में एक आलोचक की समझ के साथ भारतीय दृश्य को देखा है। भाषाएँ। उप–महाद्वीप योग्यता लेखक इसलिए उभरता है क्योंकि पिछले चार दशकों को इस सहूलियत के बिंदु से देखने के लिए

किसी कम विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति के साथ ऐसा नहीं हो सकता है। यह एक विशेषाधिकार है कि लेखक तर्क और अच्छी समझ के साथ शोषण करता है, और यद्यपि साहित्यिक चीजों के आकार के अपने समापन पूर्वावलोकन में लेखन की खामियां और कुछ अनुचित आशावाद हैं, उन्होंने पूरी तरह से हमारी अच्छी सेवा की है।

पहले दो अध्यायों में बहुत कुछ ऐसा है जिससे अधिकांश पाठक सहमत होंगे और यह जरूरी नहीं है कि यह उच्च प्रशंसा हो, आसान समझौते के लिए ट्रूइजम की एक निश्चित मान्यता है, जैसे ष्मलयालम सबसे दिलचस्प भाषा है, क्योंकि इसमें मुस्लिम, ईसाई और हिंदू हैं। समान अनुपात में लेखकष्य और अंग्रेजी में भारतीय लेखन के बारे मेंरू ष्लेकिन भारतीयों द्वारा संचालित इस भाषा ने भारतीय रचनात्मक लेखन की मुख्यधारा में बहुत कम योगदान दिया है। और.....यहाँ हमारे देश में राष्ट्रीय एकता और एकीकरण को नकारने की प्रवृत्ति है, विशेष रूप से निराश छद्म बुद्धिजीवियों में। श्री माचवे को क्लिच के उपयोग में बहुत कम सीखना है

वह विशेष रूप से भारत में साहित्यिक आलोचना की अपर्याप्तता और उस छाया पर अच्छा है जो यह अपर्याप्तता हमारे रचनात्मक कार्यों पर पड़ती है। इस बिंदु में कुछ बल भी है कि वह अक्सर यह कहते हैं कि भारत में वास्तव में अभिनव लेखन बहुत कम है, इस तथ्य के बावजूद कि समीक्षाधीन अवधि इस प्रोत्साहन के साथ रचनात्मक लेखक प्रदान करने के लिए पर्याप्त रूप से अशांत रही है। पीछे मुड़कर देखने की प्रवृत्ति, जो था उसके बारे में उदासीन होना, और जो है उसके प्रति निष्क्रिय होना, दुनिया और भारत को अपनी जड़ों से हिला दिए जाने पर भी अनुरूपता और अनछुए रास्तों से बचने की प्रवृत्ति, अच्छी तरह से कही गई है और शायद ही विवादित होगी। माचवे की अपनी पसंद के कभी–कभार सबूत मिलते हैं लेकिन ये दूर के मूल्यांकन के लिए रंग देते हैं और इसलिए योग्यता के बिना नहीं हैं।

जिस अंग्रेजी भाषा में उन्होंने अपना मूल्यांकन करने के लिए चुना है, उसके लेखन में उनकी बार–बार की जाने वाली गाली कम क्षम्य है। यह व्यावहारिक रूप से हर अध्याय में होता है और पाठक को जॉगिंग करने का प्रभाव होता है जैसे कि वह अच्छी तरह से मार्शल की गई जानकारी में आत्मविश्वास का अनुभव करता है जिसमें पुस्तक बहुत अधिक होती है। इस प्रकार भारतीय लेखक सामाजिक सुधार के माध्यम के रूप में उपन्यास (एसआईसी) का उपयोग कर रहे थेष्य ष्यह निश्चित है कि टॉल्सटॉय और गांधी के प्रभाव (एसआईसी) ने उनकी अंतरात्मा को बहुत गहराई से जगाया था प्रगतिशील लेखक जो या तो सहयात्री थे या पार्टी–जनादेश के तहत लिख रहे थे, यह साबित करने में संकोच नहीं करते थे कि सांप्रदायिक दंगे

बुर्जुआ राष्ट्रवादी आंदोलन का तार्किक परिणाम थे यह मरणोपरांत साहित्य अकादमी द्वारा विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवादित और प्रकाशित किया गया थाष्य और षविदेशों में इन भारतीय लेखकों द्वारा प्राप्त की गई लोकप्रियता आंशिक रूप से इस परिचित पैटर्न के कारण है। कोई भी कल्पना को पसंद करता है क्योंकि वह पात्र है।

प्रभाकर माचवे के काव्य में आधुनिक भावबोध

लगभग समान रूप से अस्वीकार्य लेखक का अपने अंतिम अध्याय में विपुल आशावाद है। माचवे साहित्यिक चीजों के उज्ज्वल पक्ष को लेने का हकदार है, लेकिन जब वह भारत के भविष्य को इस तरह के स्पष्ट शब्दों में घोषित करता है, ष्सदी के अंत तक भारत एक मजबूत राष्ट्र होगा, जिसकी अपनी ध्वनि अर्थव्यवस्था और पहचान होगी .... तब लेखक भारतीयकरण के मुद्दे या पूर्व और पश्चिम के बीच संतुलन और तीसरे ब्लॉक की व्यवहार्यता आदि पर चर्चा नहीं करेंगे। भारतीय साहित्य की भारतीयता एक अच्छी तरह से स्थापित वास्तविकता बन गई होगी, न कि अस्थायी और काल्पनिक चर्चा का विषय ष– एक अपने आशावाद को साझा करने के लिए वैध रूप से छोड़ सकते हैं, जबकि इस बात से सहमत होते हुए कि उनके द्वारा पूर्वानुमानित दृष्टिकोण का परिवर्तन सबसे वांछनीय है।

उन्नीसवी सदी में जब नवजागरण आंदोलन चल रहा था तब से ही आधुनिक आचार दृ विचार का विस्तार होने लगता है एवं इसी की प्रेरणा और प्रभाव से उत्तर भारत में खड़ी बोली हिंदी को आधुनिक गद्य दृ पद्य की भाषा में उकेरने की कोशिशें शुरू हो जाती है। खड़ी बोली हिंदी को आधुनिक भाषा का रूप देने का काम इस दौरान अंग्रेजो द्वारा स्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दुस्तानी (उर्दूदृहिंदी) के अध्यक्ष जॉन गिलक्राइस्ट की देखरेख में लल्लूलाल और सदल मिश्र ने किया। कुछ ऐसी ही कोशिशें कॉलेज के बाहर के लोगों, यथा सैयद इंशा अल्ला खां और कुछ ईसाई धर्मदृप्रचारकों ने भी कीं। अंततः नतीजा यह हुआ कि दुविधा और संकोच से निकलकर इसमें (खड़ीदृबोली में) कविता संभव करने का साहस भी आ गया, और इसमे सर्वप्रथम कविकर्म की शुरुआत करते हैं बाबू हरिश्चंद्र, "जिस धड़ाके के साथ गद्य के लिये खड़ी बोली ले लि गई उस धड़ाके के साथ न ली जा सकती।

"भीतर दृ भीतर सब रस चुसे, हँसि– हँसि के तन दृ मन दृ धन मूसैद्य जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि सज्जन! नहिं अंगरेज।।"

इस प्रकार यह देखा जाता है कि इस उथल पुथल से ही साहित्य में संक्रमण का दौर भी शुरू होता है क्योंकि काव्य की भाषा जो ब्रज थी एवं उसकी विषय वस्तु, भाव–भंगिमा और शैली आदि सब में धीरे दृ धीरे नये इतिहास बोध और राजनीतिक चेतना के साथ दृ साथ खड़ी बोली अपनाई जाने लगती है। भारतेंदु के दौर की कवि सक्रियता मुख्यतरू तीन प्रकार की थी, सेवक, सरदार और हनुमान। आगे हम बढ़ते है तो सायास ही अनुभव कर सकते है कि यह संक्रमण का दौर था एवं कवियों की विषयवस्तु में पर्याप्त वैविध्य था, कवि रूचि के पारंपरिक विषयों के साथ दृ साथ लोक प्रचलित अभिव्यक्तियों का प्रयोग भी करते थे जैसे होली, कजली तीज, बारहमासा, लावनी आदि का प्राद्रूभाव हो गया यहाँ हम प्रतापनारायण मिश्र की उक्त पंक्तियों में इस भावबोध के रूप में देख सकते है रू–

"यह जिय धरकत यह न होई कहु कोउ सुनि लेई।

कछू दोष दै मारहि अरु रोवन नहि देई।।"

इस प्रकार की परिस्थितियाँ अंग्रेजी राज में नव जागरण के लिए उत्पन्न की गई थी।

'छायावाद' एक ऐसी मायामय सूक्ष्म वस्तु है कि शब्दों द्वारा उसका ठीक वर्णन करना असम्भव है। उसका एक मोटा लक्षण यह है कि उसमें शब्द और अर्थ का सामंजस्य बहुत कम रहता है। कहींदृकहीं तो इन दोनों का परस्पर कुछ भी संबंध नहीं रहता। लिखा कुछ और ही गया है, पर मतलब उसका कुछ और ही निकलता है। किन्तु पाठक इस शब्द अर्थ के विरोध को देख अलंकारदृशास्त्र के रूपक अथवा व्यंग्य का विभ्रम न होने दे।" इस प्रकार महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके शिष्य कवियों के प्रयत्नों का सुफल यह हुआ कि खड़ी बोली में कविता संभव करने का सामर्थ्य आ गया। अब यह भावों के विस्तार और बारीकियों को व्यक्त कर सकती थी। इसलिए हिंदी कविता का महत्वपूर्ण दौर को हम छायावाद कह सकते है। धीरे–धीरे जब छायावाद की मायामय वस्तु वाली संज्ञा प्रचलन में आयी तो विद्वानों ने इसे अलग दृ अलग तरह से व्याख्यायित किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे बंगाल के ब्रह्मदृसमाजियों के छायापदों और टैगोर की रहस्यानुभूतियों का एक प्रकार से नवरूपांतरण मानते हुए अन्योक्ति परक शब्ददृप्रयोग का प्रश्रय देने वाली काव्य शैली घोषित कर दिया। इस युग में राष्ट्रीय दृ सांस्कृतिक कविता का विकास हुआ। तभी तो माखनलाल चतुर्वेदी अपनी अनुभूति प्रकट करते हुए कहते है कि –

"क्या देख न सकती जंजीरों का गहना।

हथ कड़ियाँ क्यों? यह ब्रिटिश राज्य का गहना।

कोल्हू का चर्रक चूं? जीवन की तान।

मिट्टी पर लिखे अंगुलियों ने क्या गान?

हूँ मोट खीचता लगा पेट पर जुआ।

खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कुआ।।"

छायावाद की व्यापक संज्ञा के अंतर्गत होने के बावजूद छायावादी कवियों की भावभूमि और सरोकार बहुत अलगदृअलग थे। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने शुरुआत तो श्रृंगार और प्रकृति से किया लेकिन आगे चलकर आत्मसंघर्ष उनकी कविता में खासकर उनकी प्रंबंध रचनाओं में सर्वोपरि रहा।

छायावादी काव्य आन्दोलन अपनी अपूर्व सौंदर्य चेतना, सूक्ष्म प्रकृति दृ पर्यवेक्षण और अभिनव अभिव्यक्ति दृ ऐश्वर्य के लिए विख्यात हुआ। बीसवीं सदी के तीसरे दशक में हिंदी कविता फिर सक्रिय हुई। इस नयी सक्रियता को ही हम प्रगतिवाद कह सकते है। इसे छायावाद की प्रतिक्रिया न मानकर उसके आर्विभाव में बदली हुई वैश्विक भारतीय परिस्थितियों की भूमिका के रूप में देखना चाहिए। वामपंथी विचार रखने वाले लेखकों ने प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की जिसका पहला अधिवेशन 1936 ई. में प्रेमचंद की अध्यक्षता में हुआ। इसलिए हम देखते है कि केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन और त्रिलोचन की कविता प्रगतिवाद के कायाकल्प की वाहक बनती है। इस युग के कवियों ने छायावाद की संकीर्ण व्यक्तिचेतना प्रधान कविताओं की जगह सामाजिक जीवन की कविताएँ लिखीं। इन्होंने अपने समय के विवेक और यथार्थ को खास महत्व दिया। एक देहाती मास्टर दुखरन, और उसके शिष्यों व मदरसे की तस्वीर नागार्जुन इस प्रकार खीचें हैं एक बानगी देखिये "घुन खाए शहतीरों पर की बारहखड़ी विधाता बाँचे,

फटी भीत है, छत है चूती, आले पर बिस्तुइया नाचे,

लगा दृ लगा बेबस बच्चों पर मिनट दृ मिनट में पाँच तमाचे,

इसी तरह से दुखरन मास्टर गड़ता है आदम से साँचे।

प्रगतिवादी काव्य आंदोलन के विकास के मंद पड़कर अन्तर्वती हो जाने के बाद प्रयोगवाद और नई कविता का आविर्भाव हुआ। नयी कविता को प्रयोगवाद का ही एक विकसित रूप माना जाना चाहिए लेकिन परिस्थितियाँ ही कुछ इस प्रकार की बनी कि दोनों को अलग दृ अलग नाम से जाना जाने लगा। इसलिए

नई कविता या प्रयोगवाद की वास्तविक शुरुआत हम अज्ञेय द्वारा संपादित 'तार सप्तक' (1943 ई .)से मान सकते है। इस सप्तक में अज्ञेय सहित मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, नेमीचंद जैन, रामबिलास शर्मा और प्रभाकर माचवे की कविताएँ शामिल थी। इस युग के कवियों ने विषयवस्तु की अपेक्षा शिल्प को ज्यादा महत्त्व दिया। नयी कविता एक प्रकार से प्रयोगवाद का विकसित रूप थी। अज्ञेय कहते है कि "हम प्रयोगशील प्रगतिशील आदि नहीं कहना चाहते, इसी से कहते है नयी कविता क्योंकि प्रगतिवाद राजनीतिक बिल्ला है और प्रयोगवाद आक्षेप ज्ञेय। नयी कविता नयी मनःस्थिति का प्रतिबिंब है, एक नये मूड का एक नये रागात्मक संबंध का। नयी कविता की मूल विशेषता है मानव और मानव जाति का नया संबंध यह मानव दृ जाति और सृष्टि के संबंध के परिपार्श्व में।"

दरअसल यह शीतयुद्धयुगीन पश्चिमी विचारधाराओं के प्रभाव और प्रेरणा से उत्पन्न आन्दोलन था। तभी तो अज्ञेय का यह कथन स्पष्ट बयान कर रहा उस समय की स्थिति को कि "अपने अन्वेषण, चिंतन, मनन, अध्ययन और अनवरत नये प्रयोगों के द्वारा कविता को अंतर्वस्तु और शिल्प दोनों ही स्तरों पर समृद्ध करके उसे मनुष्य की सहज वृत्तियो से जोड़ने का सार्थक प्रयास किया। स्वतन्त्रचेता और सतत जागरुक कवि अज्ञेय ने पश्चिमी विचारधाराओ और आंदोलनों को यथेष्ट समर्थन देते हुए उनका अंध समर्थन नहीं किया।

नयी कविता के विकास के साथदृसाथ कुछ ऐसी भाषा रूपी शिल्पदृरूढ़ियों का प्रचलन हुआ जो नई कविता के इस बने बनाये प्रारूप के लिए तो ठीक था लेकिन उसका स्वरूप बदले बिना वस्तुस्थितिक द्वंद्व को व्यक्त करना असम्भव प्रतीत होने लगा था। एक प्रकार से हम कह सकते है कि प्रयोगवाद और नई कविता सातवें दशक तक तो अपनी व्यक्तिवादिता और जड़ीभूत सौंदर्य की अभिरुचि की चरम पर थी लेकिन कुछ कवि प्रतिमाएँ इसे व्यर्थ एवं अप्रासंगिक बताते हुए कविता को सीधे अपने समय विशेष की अराजक और विक्षिप्त मनोदशा पर एकाग्र करती हुई प्रतीत हो रही थीं और यही से साठोत्तरी हिंदी कविता का उभार तत्कालीन विषम भारतीय परिदृश्य के नये उभार रूप में देखने को मिलता है। स्वतंत्रता के कुछ समय बाद ही हम देखते है कि सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में भयावह विषमताएँ दृष्टिगत होने लगी, जिनके बीज हमारे स्वाधीनता आंदोलन में पहले से ही मौजूद थे। स्वतंत्रता के बाद सदियों पुराने जर्जर और निष्प्राण सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन अपेक्षित था क्योंकि मूल्यहीन शिक्षा एवं जातिप्रथा, सांप्रदायिकता, छुआछूत और दहेज जैसी कुप्रथाओ ने दलगत और मूल्यहीन राजनीति को पुनर्जीवन दे दिया, सितम्बर 1914 में सरस्वती में पटना के हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' जो कि मूलतः भोजपुरी में है प्रकाश में आती है यथा दृ

"हमनी के राती दिन दुखवा भोगत बानी,

हमनी के सहेबे से मिनती सुनाइबि।

हमनी के दुःख भगवनओ न देखताजे,

हमनी के कबले कलेसवा उठाइबि।

पदरी सहेब के कचहरी में जाइबिजा,

बेधरम होके रंगरेज बनि जाइबि।

हाय राम! धरम न छोड़त बनत बाजे,

बेधरम होके कैसे मुहवा देखाइबि।।

वास्तव में, नयी कविता को किसी एक आधारबिन्दु या मुद्दे पर प्रयोगवाद से अलगाया नहीं जा सकता । इतना ही नहीं, अपने वृहत्तर रूप में छायावादोत्तरकृ प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कविता में नयी कविता की तमाम संभावनाएँ देखी–तलाशी जाती रही हैं । प्रयोगवाद और नई कविता में भेद रेखा अवश्य है किन्तु बहुत कुछ मिलाजुला भी है, एकदम से अलगाना बहुत श्रेयस्कर भी नहीं हैय हालाँकि इस पर आलोचकों में मतैक्य नहीं है । मोटे तौर पर कहा जाय तो छायावादोत्तर हिन्दी कविताकृ प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का विकसित, परिवर्तित एवं परिवर्धित रूप ही नई कविता है । "हिंदी में "नए पत्ते' सन् 1953 में लक्ष्मीकांत वर्मा और रामस्वरूप चतुर्वेदी के संपादन में निकला था।

निष्कर्ष

ऐसी कई कविताएँ जिन्हें उनके पूर्ववर्ती काव्य–धाराओं की रचनाओं में रख कर पढ़ा जाय तो पाठक को क्या आलोचक तक को भनक न आए । यहाँ महज इतना ही कहना है कि नये का प्रयोग या प्रयोग का टोटका की दृष्टि से रचना महान नहीं बन जाती । नई कविता की ऐसी रचनाएँ जो लोक या प्रकृति को उद्घाटित करती हैं, वे पूर्वापर निरपेक्ष नहीं हैं । हाँ, मैले हो चुके उपमानों और प्रतीकों से कूच कर गये देवताओं के लिए नये अवसर एवं नए प्रतिमान तलाशा जाय तो इसका सहर्ष स्वीकार भी होना चाहिए ।

अंधायुग के पात्र आस्थाहीन हैं, उन्हें भविष्य पर विश्वास नहीं है । 'आत्मजयी' में आस्था–अनास्था को लेकर कवि सचेत है, सामाजिक रूढ़ियों से संघर्ष में कवि ने आंतरिक और बाह्य दोनों स्तर पर हल ढूँढ़ने का प्रयास किया है । औद्योगिक सभ्यता एवं पूँजीवादी विकास ने परम्परागत सामाजिक ढाँचे को ध्वस्त करने में कोई कसर न छोड़ी । समाज, परिवार और मानवीय सरोकारों में बड़ा बदलाव आया, सामाजिक–सांस्कृतिक धरोहर और जीवन मूल्यों में अभूतपर्व परिवर्तन हुआ ।

सन्दर्भ

1. शुक्ल, ललित, नए काव्य नए मूल्य, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लि., द्वितीय संस्करण 1979, पृ.167.
2. शुक्ल, ललित, नए काव्य नए मूल्य, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लि., द्वितीय संस्करण 1979, पृ.167.
3. अज्ञेय, दूसरा सप्तक, ज्ञानपीठ, (1951), संस्कर–2, भूमिका, पृ.6 10
4. नन्ददुलारे वाजपेयी, नई कविता, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लि. प्रथम संस्करण–1976, पृ.115
5. कुँवरनारायण, सृजन के क्षण.
6. आत्मजयी, भूमिका, पृ.11–12
7. तीसरा सप्तक, पृ. 231
8. नयी कविता, डॉ. कान्ति कुमार, पृ. 102